स्व० गिजु भाई

हरिश्चन्द्र

हरिश्चंद्र

हरिश्चंद्र की कहानी सभी जानते हैं। इस पुरा-कथा ने सत्य की स्थापना की है और असंभव को भी संभव बनाया है। इस कहानी को गिजु भाई ने वर्षों पहले लिखा था। इसका हिन्दी अनुवाद व प्रकाशन किया था काशिनाथ त्रिवेदी ने। लेकिन यह पुस्तिका पिछले तीस वर्षों से अप्राप्य रही।

गिजुभाई के शताब्दी वर्ष में प्रौढ़ शिक्षा संसार के पाठकों तक इस पुस्तक को पहुंचाना हम अपना सौभाग्य समझते हैं। विश्वास है यह कथा ग्रामीण पाठकों को रुचेगी प्रेरक लगेगी और ग्राह्य भी। □

- □ लेखक:स्वर्गीय गिजुभाई (मूल गुजराती)
- □ अनुवादः काशिनाथ त्रिवेदी
- □ **चौथा संस्करण : मार्च, 1990**
- □ कीमतः दो रुपये
- □ प्रकाशनः राज्य संदर्भ केन्द्र (प्रौढ़ शिक्षा)
  7-ए, झालाना संस्थान क्षेत्र,
  जयपुर-302004
- □ कलापक्षः विभाष दास
- □ HARISHCHANDRA BY GIJUBHAI
- □ मुद्रकः भालोटिया प्रिन्टर्स, जयपुर

हरिश्चन्द्र

इन्द्र-सभा

देवों का राजा इन्द्र इन्द्रलोक में अपनी सभा के बीच सोने के सिंहासन पर बैठा था। स्वर्ग के सारे देव पधारे थे। मृत्युलोक के ऋषि-मुनि भी आये थे। गन्धर्व, यक्ष, किन्नर सब एक पैर पर खड़े थे। मेनका और रम्भा नाम की अप्सरायें मधुर कण्ठ से गा रही थीं। नारद मुनि भी अपना तम्बूरा बजा रहे थे। सभामण्डप अगरु-चन्दन की धूप से महक रहा था। चारों ओर मणिमाणिक के अखण्ड दीपकों का तेज जगमगा रहा था। आज देवों का राजा इन्द्र स्वर्ग-लोक में सोने के सिंहासन पर सभा जुड़ाये बैठा था।

एकाएक इन्द्र ने प्रश्न पूछा—है कोई ऐसा मृत्युलोक का आदमी, जो प्राण चाहे दे दे, पर सच्चाई को कभी न छोड़े? जो दिया हुआ वचन कभी न तोड़े? जो एक भी झूठी बात मुँह से न बोले?

गाना-बजाना बन्द हो गया! सभा सारी सन्न रह गई! सब एक-दूसरे का मुँह ताकने लगे। भला मृत्युलोक में ऐसा आदमी कौन होगा?

एक कोने से धीर-गम्भीर आवाज आई—"है, महाराज! दुनिया के पर्दे पर ऐसा एक आदमी है, जो कभी झूठ नहीं बोलता, कभी झूठा वचन नहीं देता, कभी दिया हुआ वचन नहीं तोड़ता। है, ऐसा एक आदमी। नाम उसका हरिश्चन्द्र है। अयोध्या नगरी का वह राजा है।"

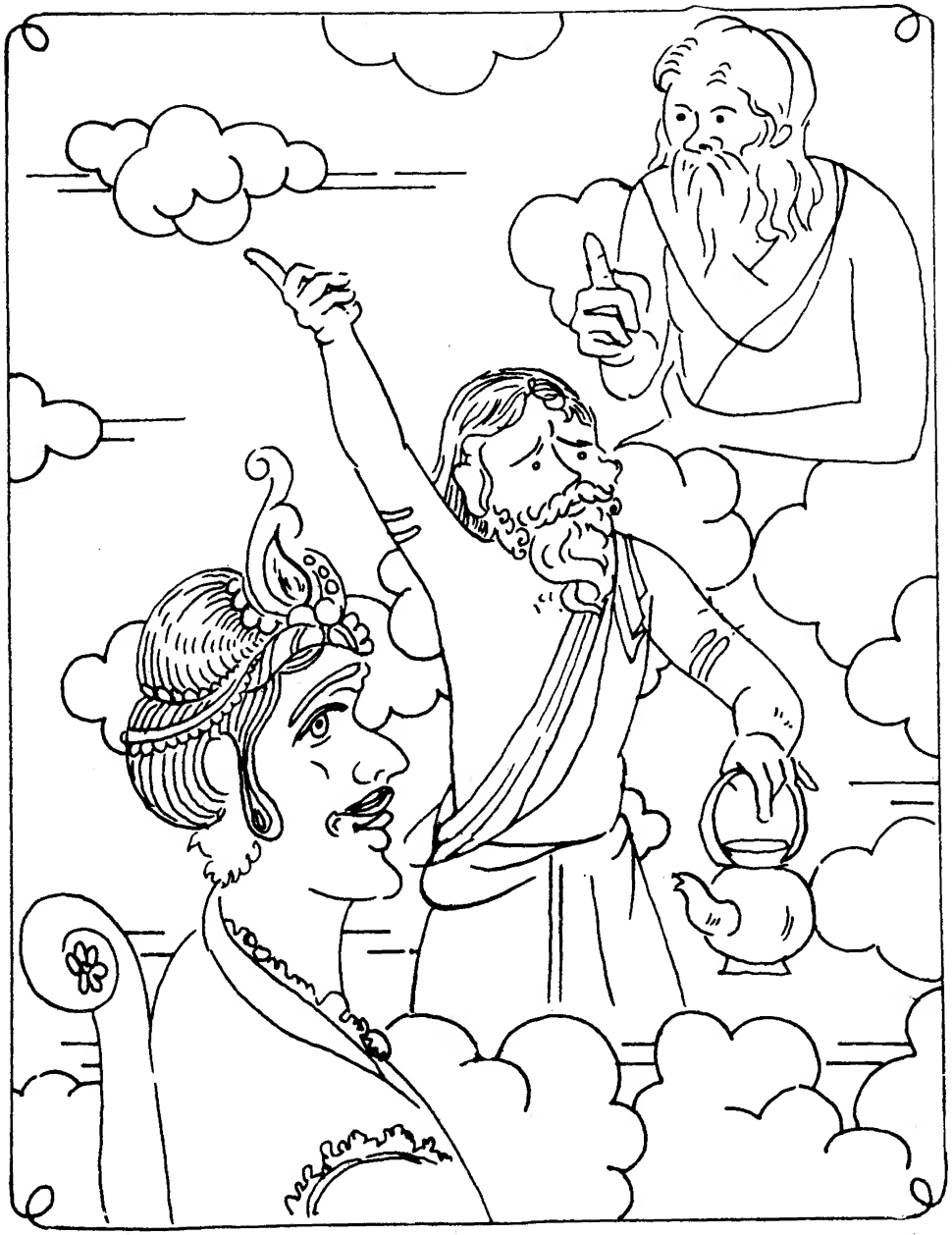

हरिश्चंद्र के कुल-गुरु वशिष्ठ इतना कहकर चुप हो गये ।

सभा सारी गूंज उठी—धन्य है, हरिश्चंद्र को ! धन्य है, उसके माता-पिता को ! धन्य है ! धन्य है !!

आँखें जिनकी लाल थीं, गुस्से से जिनके ओठ काँप रहे थे, जिनका अंग-अंग थरथरा रहा था, वे विश्वामित्र ऋषि उबल पड़े—अरे वशिष्ठ, शरमाओ ! शरमाओ ! देवों की सभा में भी झूठ ! सुना है किसी ने कि राजा सच बोलते हैं ? जाना है किसी ने कि आदमी सच बोलते हैं ? अरे-रे ! आप हरिश्चन्द्र के कुल-गुरु हैं, तो क्या झूठी तारीफ करने के लिए ?

सभा सारी सहम उठी । विश्वामित्र का क्रोध ! विश्वामित्र का काँपना ! विश्वामित्र की वाणी !

वशिष्ठ ने जवाब दिया—"विश्वामित्र ! क्रोध तुम्हें भुला रहा है । हरिश्चन्द्र को तुमने पहचाना नहीं । राजाओं का वह मुकुट है । उसकी रानी तारामती, उसका पुत्र रोहित; अरे ! ये तीनों मृत्युलोक के स्वर्ग हैं । पृथ्वी की गङ्गा हैं ।"

"बस करो ! बकवास बन्द करो ! जानता हूँ उस हरिश्चन्द्र को, और देख लूंगा मैं उसे । बार-बार मैं कहता हूँ और कहता रहूँगा कि दुनिया में कोई सच बोलने वाला नहीं है, और हरिश्चन्द्र तो हरगिज नहीं है ।"

विनय से, धीरज के साथ, हँसते-हँसते, वशिष्ठ ने उत्तर दिया—"अच्छा तो महाराज इन्द्र उसकी परीक्षा ले लें । और गवाह रहो तुम, ऐ स्वर्ग के देवताओं ! अगर हरिश्चन्द्र ने एक बार भी झूठी बात कही, तो वशिष्ठ अपना तप हारेगा; ब्राह्मण कहलाना छोड़ देगा; रात और दिन जंगल में जाकर तप करेगा ।"

विश्वामित्र आग-बबूला हो उठे—"बहुत हुआ ! बस करो ! सोचते हो कि मैं डर जाऊँगा। याद रक्खो कि मैं तुम्हारे हरिश्चन्द्र को डिगा दूँगा। एक बार नहीं, दो बार नहीं, बार-बार झूठ बुलवाऊँगा। और ऐ देवो ! गवाह रहना तुम इस ऋषि के ! वशिष्ठ अगर हारे, तो ब्राह्मण कहलाना छोड़ेंगे; लेकिन अगर कभी विश्वामित्र हारा—पहले तो वह कभी हारेगा नहीं, लेकिन शायद कभी हारा—तो अपने तप के बल से वह हरिश्चन्द्र को स्वर्ग दिलायेगा। अरे, इन्द्र का इन्द्रासन दिलायेगा ! और इससे भी आगे बढ़कर हरिश्चन्द्र को अपनी तमाम ताकतें सौंप देगा, सब शक्तियाँ दे डालेगा !"

हाहाकार मच गया ! इन्द्र तक घबरा उठा—गजब हो गया ! विश्वामित्र ने प्रतिज्ञा की है। क्षत्रियकुल के विश्वामित्र ! क्रोध के अवतार विश्वामित्र !

रंग में भंग हो गया ! मुंह लटकाये, मन मलीन, सब सभासद् अपने-अपने घर गये। सभा विसर्जित हुई।

राज-सभा

हरिश्चन्द्र अयोध्या के राजा हैं। अपनी राज-सभा में बैठे हैं। प्रजा के लोग भी बैठे हैं। राज-काज चल रहा है।

"राजन्, एक ऋषि पधारे हैं !"

हरिश्चन्द्र खड़े हो गये। आँगन तक सामने गये। पैर छूकर आशिष् माँगी। आगे चलकर सिंहासन के पास आये। ऋषि विश्वामित्र को राज-सिंहासन के समीप ही बैठाया।

"पधारिये, ऋषिजी ! कहिये, कैसे पधारना हुआ ? क्या इच्छा है आपकी ?"

"राजन् ! राजाओं में आप श्रेष्ठ हैं। ऋषियों के आप प्यारे हैं। आपकी प्रजा संतुष्ट और सुखी है। वन-उपवन सब सुरक्षित हैं। आशीर्वाद है ! राजन्, एक चीज माँगने आया हूँ।"

"आज्ञा कीजिये, महाराज !"

"एक करोड़ सोने की मुहरें दिलाओ। बड़ा भारी यज्ञ करना है। बस, यही हमारी माँग है। दे सकोगे, हरिश्चन्द्र ?"

राजा हरिश्चन्द्र का वचन ! सत्यवादी का वचन ! दिया हुआ, लौट कैसे सकता था ?

"हाँ ! महाराज, सोने की मुहरें तैयार हैं। एक करोड़ और एक सौ एक ! चाँदी के थाल में मँगाऊँ ? आपके आश्रम तक पहुँचा दूँ ?"

ऋषि मन में समझ गये—राजा है तो सत्यवादी ! इसकी टेक छुड़ाना आसान नहीं है। कहा—नहीं राजन् ! अभी यहीं रक्खो। जरूरत पड़ने पर माँग लूँगा।

"जैसी ऋषिजी की इच्छा !"

विश्वामित्र लौट गये। जलते-भुनते लौट गये। तरकीब सोचते लौट गये। कैसे झूठा साबित करूँ ? किस तरह अपनी प्रतिज्ञा पालूँ ?

तप का बल

तप के बल का उपयोग किया। तपोबल से पशु बनाये—जंगली और फाड़कर खा जाने वाले। सैकड़ों और हजारों।

चारों ओर हाहाकार मच गया—जंगल के पशु मारते हैं। ढोर-ढाँखरों को मारते हैं, ग्वालों को मारते हैं, रखवालों को

मारते हैं ! काटते हैं, तोड़ते-फोड़ते हैं, कुचलते-मसलते हैं, खाते हैं ! फसल बरबाद कर डाली, झाड़-पेड़ सब उखाड़ डाले, फूलों-फलों का नाश कर डाला ! दौड़ो. दौड़ो ! बचाओ, अरे, कोई बचाओ !

राजा हरिश्चन्द्र मदद को दौड़े। जंगली पशुओं को मार गिराया। सिंहों और बाघों को सुला दिया। सूअरों और गेंडों को छेद डाला; चीतों और तेंदुओं को ढेर कर दिया। जंगल में फिर से शान्ति, शान्ति छा गई !

शिकार खत्म हुआ। शिकारी लौटे। राजा-रानी वशिष्ठ ऋषि के आश्रम में पहुँचे।

कुल-गुरु के पैर छुए। वशिष्ठ ऋषि ने आशीर्वाद दिया और उपदेश देते हुए कहा—"राजन् ! अपने राज में जाइये। देखिये, रास्ते में ऋषि विश्वामित्र के आश्रम में न जाइये !"

"जैसी आज्ञा ! जैसी गुरुदेव की इच्छा !"

विश्वामित्र की माया

इधर विश्वामित्र विचार कर रहे हैं—कैसे हरिश्चन्द्र से राज छुड़ाऊँ ? जङ्गली जानवरों को मार डाला। लोगों की आफत को दूर कर दिया। अब क्या तदबीर करूँ ? (सोचकर) हाँ, हाँ; एक नहीं, अनेक हैं। चलो, तो ऐसा ही करूँ।

हरिश्चन्द्र और तारामती रथ में बैठे चले आ रहे हैं। वन-उपवन की शोभा सुन्दर है। मनोहर पक्षी मीठी बोली बोल रहे हैं।

"लेकिन अरे, उस हिरन को तो देखो ! कितना सुन्दर है ! कैसा सुकुमार ! कितना अच्छा !"

कुमार रोहित पिता से कहता है—"ला दो न पिताजी, इस हिरन को ! मैं इसे पालूँगा। कितना सुन्दर है वह !"

और, राजा ने रथ हाँक दिया। आगे-आगे हिरन और पीछे-पीछे राजा। जंगल-जंगल हिरन दौड़ता और चौकड़ियाँ भरता है। राजा भी रथ पर बैठा पीछा कर रहा है। आगे हिरन और पीछे हरिश्चन्द्र। करीब, और करीब. यह पकड़ा. यह आया ! लेकिन अरे ! कहाँ है हिरन ? गायब हो गया ! न हिरन, न बिरन, कुछ नहीं !

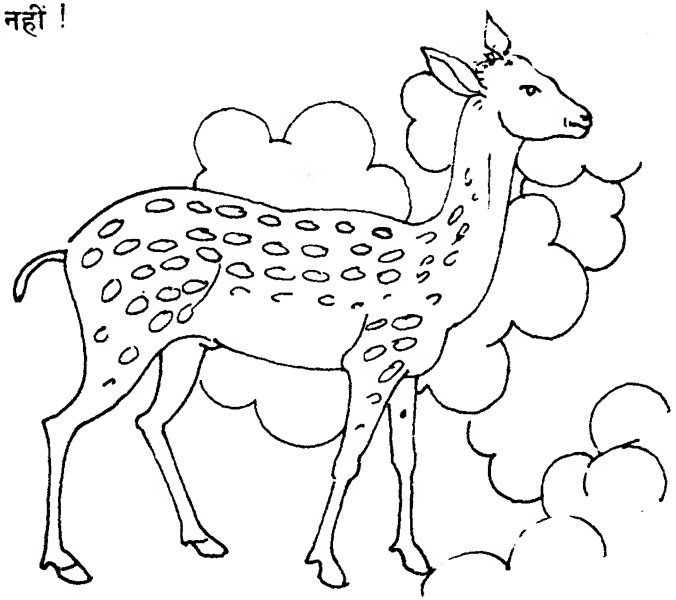

राजा, रानी और रोहित इस समय कहाँ थे ? विश्वामित्र के आश्रम के पास। आश्रम के आँगन में। हिरन तो माया का बना था। विश्वामित्र ही ने तो उसे भेजा था।

"अरे रे, वशिष्ठ मुनि ने मना किया था, और हम तो वहीं आ पहुँचे !"

"हरि, हरि ! जैसी भगवान् की इच्छा ।"

"चलो तो फिर नगर की ओर चलें ।"

"जरा थकान उतार कर चलें, तो धूप भी कुछ नरम पड़ जायगी ।"

सुहावने तालाब के पास रथ खड़ा था । मीठी, हलकी हवा बह रही थी । पक्षी मीठी तान सुना रहे थे । कैसा कोमल कण्ठ था ! कैसी मिठास थी ! रोहित एक कुंड से दूसरे कुंड पर जा-जाकर रंग-बिरंगी मछलियाँ देख रहा था ।

तारामती की आँखों में नींद आई । आई और चली गई ! घबराकर वह उठ बैठी । बोली—"अरे ! यह कैसे हुआ ? राजा के मुकुट को किसने गिरा दिया ? राजा का अपमान किसने किया ? अरे, राज किसने ले लिया ?"

"घबराओ नहीं, तारामती ! वह तो एक सपना था ।" हरिश्चन्द्र तारामती को ढाढस बँधा रहे हैं । धीरे-धीरे भय दूर कर रहे हैं । माथे पर और पीठ पर हाथ से सहला रहे हैं । मन में वहां से जाने का विचार कर रहे हैं । रथ जोतने की आज्ञा दे चुके हैं ।

इतने में यह कौन आ पहुँचा ?

अरे, ये तो वन-कन्यायें हैं । सुन्दर वीणा इनके हाथों में है । बालों में कमल खोंसे हैं, और गलों में फूलों के हार हैं ।

"सुनिये राजन् ! हमारी बीन के गीत सुनिये ! अब तो सुन कर ही जा सकेंगे !"

रथ खड़ा रहा । राजा-रानी वीणा सुनने को रुक गये ।

कन्याओं ने बीन के तार छेड़ दिये । चारों दिशायें मीठी तान से, मधुर संगीत से भर गयीं । राजा हरिश्चन्द्र खुश-खुश हो गये ।

"लो, यह मेरे गले का रत्नों से जड़ा हार । यह मेरा माणिक-जड़ा बाजूबन्द !"

"नहीं, राजन्, हमें इनकी जरूरत नहीं । हमें तो उस राजछत्र

की जरूरत है, सफेद चाँदनी-जैसा आपका वह राजछत्र !"

"राजछत्र ! वन में रहने वाली लड़कियाँ राजछत्र माँगती हैं ? कैसी अजीब माँग है ? राजा कैसे दे सकता है, अपना राजछत्र ? राज यानी राजछत्र और राजछत्र यानी राज !" हरिश्चन्द्र के मन में ये विचार आ गये। हरिश्चन्द्र ने कहा—"वन-कन्याओ ! राजछत्र नहीं माँगा जाता। लो, यह हार लो और लौट जाओ।"

"नहीं, तो हमसे ब्याह करो। या तो राजछत्र दो, या हमें ब्याहो।"

राजा हरिश्चन्द्र दंग रह गये। क्या कहती हैं ये ! कैसी गुस्ताख हैं ये ! कितनी हलके सुभाव की हैं ये ! मातंग-कन्याओं से मैं ब्याह करूँ ?

लेकिन राजा को पता नहीं था कि यह सारा जादू तो विश्वामित्र का है। उन्हींने इन लड़कियों को भेजा था। उन्हींने इनको यह सब सिखाया था। विश्वामित्र हरिश्चन्द्र का सत् लेना चाहते थे।

"क्यों राजन्, क्या कहते हैं ? क्या जवाब है आपका ? हमसे ब्याह करते हैं या हमें राजछत्र देते हैं ?"

हरिश्चन्द्र से न रहा गया। गुस्से ने उन्हें बेकाबू कर दिया। होना था, सो हो गया। पास ही एक लकड़ी पड़ी थी। राजा ने उठा ली और मातंग-कन्याओं को पीट दिया।

बस, यही तो चाहिए था। सुलगती हुई आग से जैसे लपटें निकलती हैं, पेड़ों की घटा के भीतर से विश्वामित्र वैसे ही बाहर निकले—"रे दुष्ट ! रे पापी ! रे नीच ! इन गरीब बेचारी मातंग-कन्याओं पर हाथ उठाते हुए तू शरमाता नहीं ? और इस आश्रम में तू आया कैसे ? किससे पूछा ? यह पानी कैसे पिया ? किसकी आज्ञा से ? इस छाया में क्यों बैठा है ? किसके हुक्म से ? हरिश्चन्द्र ! क्या तू जानता नहीं कि यह आश्रम ऋषि विश्वामित्र का है ? विश्वामित्र से पूछे बिना तू यहां कैसे आया ? विश्वामित्र की कन्याओं को तूने क्यों पीटा ?"

"क्षमा, क्षमा कीजिये, महाराज ! मैं अनजान हूँ। अनजान को माफी मिलती है। महाराज, गुस्सा न कीजिए !"

"क्षमा चाहता है ? एक ही शर्त पर क्षमा मिलेगी। इन मातंग-कन्याओं को ब्याह ले और इन्हें अपनी रानी बना ले। बस, तभी माफी मिलेगी। नहीं तो……"

"नहीं महाराज, मुझसे यह नहीं हो सकेगा। मैं क्षत्रिय हूँ। मातंग-कन्याओं को कैसे ब्याहूँ ? अपना धर्म कैसे छोड़ूँ ? महाराज,

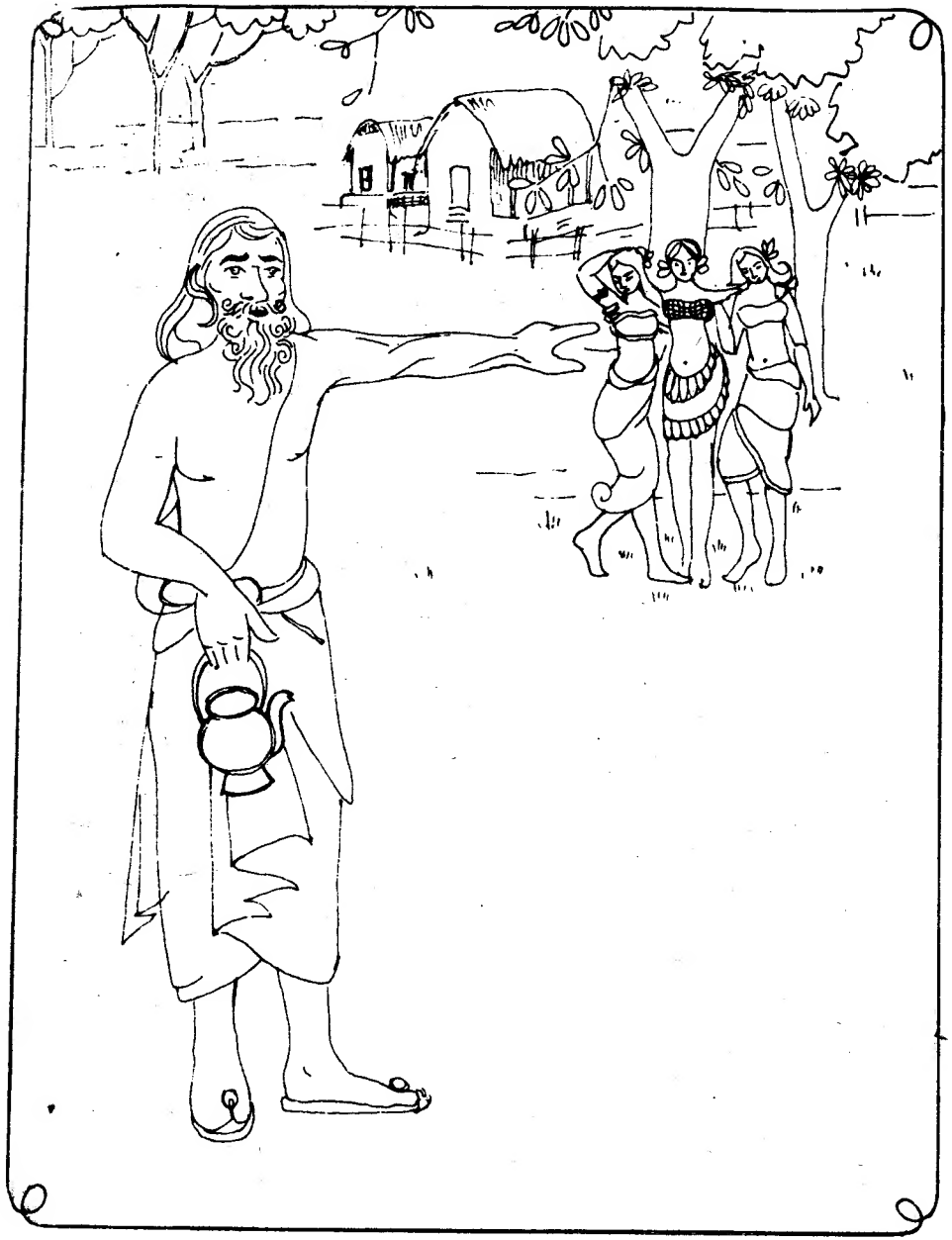

क्षत्रिय तो धर्म के लिये जीते और धर्म के लिये मरते हैं। आप कहें तो अपना राजपाट हार जाऊँ, जीवन सारा न्यौछावर कर दूं, पर धर्म को कैसे छोड़ूं ?"

"अच्छा, तो तुझे धर्म प्यारा है न ? ठीक है, तो धर्म के लिये राजपाट हार जा; अयोध्या का राज दे दे। अच्छा है, फिर अपने धर्म की रक्षा किया करना। धर्म तेरा भला करेगा।"

हरिश्चन्द्र ने हाथों में पानी लेकर विश्वामित्र को अयोध्या का राज दे दिया—"लो, महाराज ! आज से राज आपका और आज से धर्म हरिश्चन्द्र का !"

राज तो ले लिया, लेकिन विश्वामित्र मन ही मन हरिश्चन्द्र की स्तुति करने लगे। धन्य है, इस प्रणवीर को ! धन्य है, धर्म-रक्षक हरिश्चन्द्र को ! धन्य है, इसके माता-पिता को !

हरिश्चन्द्र, तारामती और रोहित राज की तरफ जा रहे थे। विश्वामित्र ने कहा—"कल मैं राज में आऊँगा और राजचिह्न धारण करूँगा। कल तुम जंगल में रहने को जाना।"

"बहुत अच्छा, महाराज !"

इतना कहकर राजा-रानी चले गये।

राज्य-दान

सभा जुड़ी है। बीच में राजा हरिश्चन्द्र बिराजे हैं। पास ही ऋषि विश्वामित्र बैठे हैं। राज लेने आये हैं।

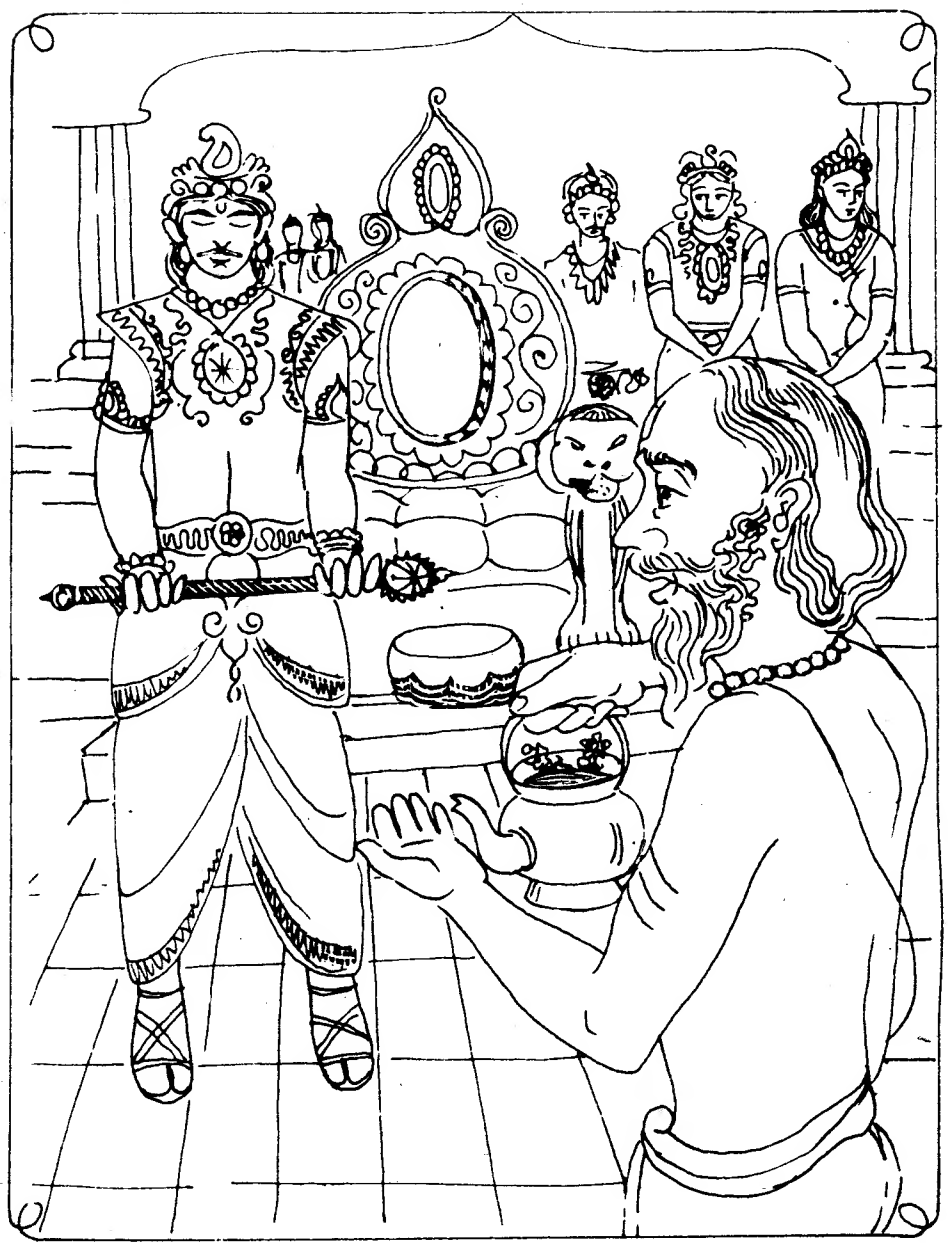

हरिश्चन्द्र खड़े हुए। हँसते-हँसते कहने लगे—"मेरे प्यारे प्रजागण ! सुनिये, और जैसा मैं कहूँ, वैसा ही कीजिए। मैं आपका राजा रहा। आप मेरी प्रजा। मैंने आपकी रक्षा की, आपने मुझको निबाहा। आपका दु:ख मेरा था, और मेरा दु:ख आपका था। आपके कारण मैं था, और मेरे कारण आप। कई बरस बीत गये—सुख और शान्ति के, दु:ख और अशान्ति के !

आज इस सबका अन्त हो रहा है। आज मैं इसे छोड़ रहा हूँ। धर्म के लिये छोड़ रहा हूँ। क्षत्रिय के पास और कोई रास्ता नहीं। अब इन ऋषिजी को आप अपना राजा मानिये। आप इनकी प्रजा बनिये। सुख-शान्ति बढ़ाइये। मुझे आप याद करते रहिये। मेरी गलतियों को, मेरे अपराधों को भूल जाइये।"

"प्यारे प्रजाजनो ! अब ये आपके राजा हैं, और आप इनकी प्रजा हैं।"

हरिश्चन्द्र ने विश्वामित्र को राजदंड थमाया—फरफर फहराता हुआ राजछत्र विश्वामित्र के माथे पर शोभने लगा।

राजसभा रो पड़ी। आँखों से सावन-भादों बरसने लगे।

राज्य-त्याग

राजा, रानी और रोहित वन को जा रहे थे। अयोध्या में हाहाकार मचा था। सारी नगरी राजा को पहुँचाने के लिये उलट पड़ी थी। लोग फफक-फफक कर रो रहे थे। बूढ़े, बालक और जवान, सब रो रहे थे।

"वह रहा, वह दुष्ट ऋषि ! ऋषि क्या है, यमराज का अवतार है !"

"क्या कहता है, वह ऋषि, सुनो तो ?"

"हरिश्चन्द्र, ये कपड़े तुम्हारे हैं क्या ? इन्हें उतार दो । यहीं छोड़ जाओ । पेड़ों की छाल पहन लो । तारामती और रोहित को भी पहना दो ।"

"जो आज्ञा महाराज !"

छत्रहीन, वस्त्रहीन, अलंकारहीन, दंडहीन, दास-दासी से विहीन, राजा हरिश्चन्द्र ! रथहीन, दासीविहीन, छाल पहने, नंगे पैर राज-रानी तारामती । पग-पैदल, बक्कल पहने, संगी-साथियों से हीन, खिलौनों के अभाव-वाला राजकुमार रोहित ! आज सत्य के लिये तीनों वन को जा रहे हैं । नगरी सारी उन्हें बिदा करने आई है ।

आँखों से आँसू झड़ रहे हैं । आसमान से फूल बरस रहे हैं ।

धन्य है, हरिश्चन्द्र को ! धन्य है, उसके माता-पिता को ! धन्य है, धन्य है ! सत्य के लिये जीनेवाले को धन्य है !

"अरे, यह और कौन बोला ?"

"ये तो विश्वामित्र हैं !"

"राजा हरिश्चन्द्र, जाते कहाँ हो ? मेरी एक करोड़ सोने की मुहरें कहाँ हैं ? जब मांगूँ, तब देने की बात थी न ?"

"भण्डार में—खजाने में—रखवाई हैं, महाराज !"

"अरे, भण्डार और खजाने तो अब राजा के हैं—विश्वामित्र के हैं । उन पर तुम्हारा हक अब नहीं रहा । अदा कर दो, यह कर्ज । नहीं तो समझो कि तबतक तुम बन्धन में हो !"

हरिश्चन्द्र तो सत्यवादी थे । तो सुनिये, सत्यवादी ने क्या जवाब दिया—"देह बेचूँगा, रानी को और राजकुमार को बेचूँगा । कर्ज आपका अदा करूँगा । एक महीने की मुहलत दीजिये । एक महीने के अन्दर अदा न कर दूँ, तो हरिश्चंद्र का सत् जाय, हरिश्चन्द्र की साख डूबे !"

लोग सब हाहाकार कर उठे—"अरे, ओ निष्ठुर ऋषि ! तू फट क्यों नहीं पड़ता ? जल क्यों नहीं मरता ? धरती धूजती क्यों नहीं ? पहाड़ डोलते क्यों नहीं ? आसमान फटता क्यों नहीं ?"

काशी के रास्ते में

राज का धनी आज वन में है । महलों की रानी जंगल में है । अयोध्या से काशी तक का जंगल—घोर जंगल । रास्ता तो क्या, पगडंडी तक नहीं—निर्जन, कँटीला, झाड़-झंखाड़ों वाला । शेर और बाघ, भेड़िये और भालू ! इन सबको पार करके हरिश्चन्द्र और तारामती काशी को चले हैं ।

आज तो पहला दिन है । सिर पर तेज धूप पड़ रही है । पैरों में काँटे चुभ रहे हैं । रास्ते के लिये कभी इधर, कभी उधर भटकना पड़ता है । बेचारे रोहित से चला नहीं जाता । थोड़ी देर माँ उठाती है, थोड़ी देर पिता उठाते हैं । अरे रे ! राजमहलों में खिले हुए इन कोमल-कोमल फूलों की आज यह कैसी दशा है ? अरे, उस निष्ठुर विश्वामित्र ने यह क्या किया ?

लेकिन, यह तो कुछ भी नहीं है। विश्वामित्र ने साथ में नक्षत्र नाम का एक लड़का भेजा है—एक करोड़ सोने की मुहरें लाने के लिये। और लड़के से कहा है—"रास्ते में इन्हें खूब तकलीफ़ देना। झूठमूठ बीमार पड़ना। जैसे-तैसे देर लगाना। देखना, तीस दिन से पहले ये काशी न पहुँच सकें। तीस दिन बीतेंगे, और राजा की प्रतिज्ञा टूटेगी। बस, मैं यही तो चाहता हूँ।"

नक्षत्र बार-बार हैरान करता है। रास्ता चलते-चलते धम्म से गिर पड़ता है, और "अरे! गिरा रे! मरा रे! पानी लाओ! पानी पिलाओ! ब्राह्मण का बेटा मर जायेगा। राजा, तुझे पाप लगेगा" कहकर चिल्लाने लगता है।

ऐसे समय पानी कहाँ से लाया जाये? कहीं पानी दिखाई भी तो नहीं पड़ता। हरिश्चन्द्र घबरा जाते हैं—इधर-उधर दौड़ते हैं। "हे भगवन्! हे सत्यनारायण! लाज रखना! बिना कारण मुझे ब्रह्म-हत्या लगेगी।"

कुछ ही दूर गये थे कि देखा, मीठे पानी का एक झरना बह रहा है। हरिश्चन्द्र ने पानी भरकर नक्षत्र को पिलाया।

बेचारे चले जा रहे थे। थकते थे, पकते थे, लेकिन चले जा रहे थे। फल मिलते, फूल मिलते, जो भी मिलता, खाते थे, और आगे बढ़ते रहते थे।

एकाएक चारों तरफ आग! अरे यह क्या? क्या सारा जंगल जल उठा? अब हम कैसे बचेंगे? विश्वामित्र का कर्ज कैसे चुकेगा?

तारामती, हरिश्चन्द्र, और रोहित कहाँ थे? मौत के मुँह में थे। अभी वे जल जायँगे। नक्षत्र घबरा उठा—"अरे! ओ

हरिश्चन्द्र! सूझता नहीं क्या तुझे? पल भर में हम जल मरेंगे। अरे राजा! हठ क्यों करता है? मातंग-कन्याओं को ब्याह ले न? विश्वामित्र का ध्यान कर! ऋषि से माफ़ी माँग। वे हमें बचा लेंगे।"

पर हरिश्चन्द्र तो सत्यवीर थे। वे क्यों डरने लगे? "तारामति! पहली आहुति अपनी ही देता हूँ। मैं ही आग में गिरता हूँ। अग्नि तुरन्त बुझ जायेगी। बेचारा नक्षत्र बचेगा। ब्राह्मण को बचाने का पुण्य तो मिलेगा!"

"जय भगवान्! जय जगदीश!" कहकर हरिश्चन्द्र आग की ओर लपके—दौड़े। पर, तारामती ने रोक कर कहा—"राजन्! आप जल मरेंगे, तो ऋण कौन चुकायेगा? दुनिया कहेगी, हरिश्चन्द्र ने वचन भङ्ग किया। मैं आपकी रानी हूँ। आपका आधा अंग हूँ। जैसे आप, वैसी मैं हूँ। मैं जाकर जलूँगी। आप रोहित की, राज की और अपने वचन की रक्षा कीजियेगा।"

आग तो निकट आ रही थी। लपटें बदन को छू रही थीं। तारामती ने हरिश्चन्द्र के पैर छुए। रोहित को चूमा। भगवान् का ध्यान किया और आग में कूद पड़ी!

अहाहा! यह क्या? आग की लपटें कहाँ गयीं? तारामती जली नहीं, झुलसी नहीं, गरम आँच भी उन्हें लगी नहीं!

विश्वामित्र की यह माया थी! परीक्षा के लिये रची थी। सत्य के बल से तारामती और हरिश्चन्द्र परीक्षा में पास हुए। विश्वामित्र तो हारते ही जाते थे। पग-पग पर विजय हरिश्चन्द्र की थी।

ऋषि अकेले में आकर नक्षत्र से कह गये—"तारामती को बहका दो। उलटा पाठ पढ़ा दो। तारामती के बिना हरिश्चन्द्र

आधा रह जायेगा। उसकी आधी हिम्मत टूट जायेगी। फिर वह थक जायेगा और हार जायेगा।"

मौका पाकर नक्षत्र ने तारामती से कहा—"अरी राजरानी! ब्राह्मण के बेटे की बात मानो। यह राजा हरिश्चन्द्र तुम्हें और रोहित को काशी के बाज़ार में बेचेगा। ऋण चुकाने के लिये गाय और बछड़े की तरह बेचेगा। तुम यह सह न सकोगी। और, इस सुकुमार शरीर रोहित को क्यों यह दुःख देती हो? भागो। जिसने वचन दिया है, वह भले तकलीफ सहा करे। तुम लौट जाओ और विश्वामित्र की शरण लो। वे तुमको तुम्हारा राज लौटा देंगे। रोहित को राज-गद्दी दे देंगे। राज-माता बनकर तुम सुख से रहना।"

तारामती ने लम्बी साँस ली—कैसा नादान छोकरा है! कैसी इसकी सिखावन है!

तारामती ने कहा—"नक्षत्र! मुझे मेरा धर्म बहुत प्यारा है। हरिश्चन्द्र मेरे राजा हैं। उनके सुख से मैं सुखी और उनके दुःख से दुखी हूँ। यह मेरा धर्म है। जहाँ वे हैं, वहाँ मैं हूँ, और जहाँ मैं, वहाँ वे। मेरे प्राण भले ही निकल जायँ, पर मैं हरिश्चन्द्र से अलग कैसे हो सकती हूँ? और, उनके बिना, मेरे राजा के बिना, राज के सुख को मैं क्या करूँ? नक्षत्र! स्त्री को तुम ऐसी सिखावन कभी मत देना। स्त्री के मन को तुम नहीं पहचानते।"

नक्षत्र शरमा गया। विश्वामित्र की यह तदबीर भी बेकार हुई!

काशी में

राजा-रानी काशी नगरी में जा पहुँचे हैं। बहुत थोड़ा दिन बाकी है। अब राजा या तो एक करोड़ सोने की मुहरें प्राप्त करे, या अपना सत् हारे!

हरिश्चन्द्र मन ही मन में चिन्ता कर रहे हैं—एक ही दिन में, कुछ ही घण्टों में, इतनी बड़ी रक़म कैसे कमाई जाये! यहाँ कौन मेरी जान-पहचान का है, जो मेरी साख पर मुझे इतना धन दे दे?

तारामती राजा की चिन्ता को ताड़ गई। कहने लगी—"राजन्, आप इतनी फिक़र क्यों करते हैं? चलिए, हम बिकें। सत्य के लिये बिकें। पचास लाख पर आप, और पचास लाख पर तारामती।"

अयोध्या की रानी को अयोध्या का राजा आज गली-गली, चौराहे-चौराहे और बाज़ार-बाज़ार बेच रहा है—"लेगा कोई इस स्त्री को? खरीदेगा कोई इस दासी को? पचास लाख इसकी क़ीमत है।"

किसकी हिम्मत कि पचास लाख ख़रचे?

सारी काशी नगरी में हाहाकार मच गया—अरे रे! ऐसा क्या दुःख आ पड़ा कि मर्द अपनी औरत को बेचता है? पति पत्नी को बेच रहा है? अरे रे, इतना धन कौन देगा?

कौशिक नाम का एक ब्राह्मण था—बूढ़ा; फटेहाल; झुकी हुई कमर और बदसूरत! उसने पचास लाख गिन दिये और तारामती को ख़रीद लिया।

रानी ने राजा की परिक्रमा की। नीचे झुकी। पैर छुए। बालक रोहित को चूमा, और आँखों में आँसू भरकर वह चल पड़ी।

मन ही मन मनाती जाती थी—हे भगवन्, राजा का सत् रखना!

बूढ़ा कौशिक लौट पड़ा, और गुस्से से गरज उठा—"गाय के साथ बछड़ा, और माँ के साथ बेटा; पचास लाख में दोनों। नहीं तो मुहरें वापस करो।"

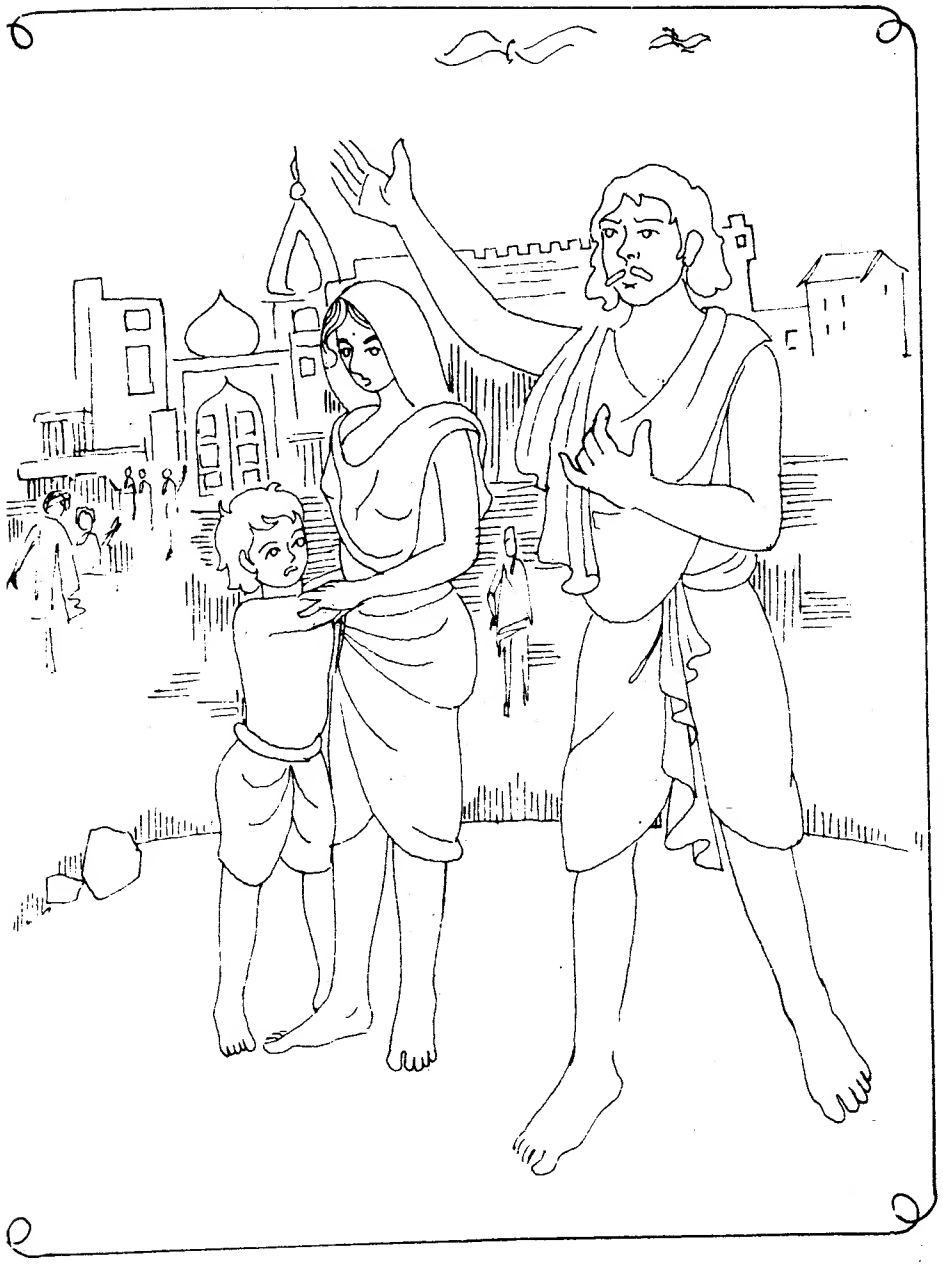

माँ और बेटा दोनों चल पड़े। राजा की रानी आज नौकरानी बनी ! राजकुँवर चाकर बना। माँ, बेटा और बाप तीनों साथ थे, सो वे भी आज बिछुड़ गये। देव भी अब तो हाहाकार कर उठे—अरे रे ! निष्ठुर विश्वामित्र ! और भी ? और भी ?

आधी रक़म मिली। आधी अभी बाक़ी है। हरिश्चन्द्र जगह-जगह घूमते हैं। जिसे-तिसे कहते हैं—"ख़रीदेगा कोई इस नौकर को ? पचास लाख सोने की मुहरें माँगता हूँ।"

करोड़ों का स्वामी, राज का मालिक, हीरा-माणिक और मोतियों का धनी, आज मुहरों के लिये अपने को बेच रहा है; पर कोई उसे ख़रीदता नहीं !

आखिर एक चाण्डाल ने—एक भङ्गी ने—उसे ख़रीदा। ख़रीदा और किसी ने नहीं, चाण्डाल ने ! बिका और किसी के हाथ नहीं, चाण्डाल के हाथों ! लेकिन किसलिए ? सत्य के लिये ! भैया, अपने वचन के लिये !

विश्वामित्र फिर हारे। सत्यवादी का सत्य क़ायम रहा।

पचास लाख और मिले और एक करोड़ पूरे हो गये। नक्षत्र को दे दिये। विश्वामित्र का क़र्ज़ अदा हो गया।

पर क्या विश्वामित्र को कुछ अक्ल आई ? विश्वामित्र ने पिण्ड छोड़ा ?

नहीं, नहीं ! अभी तो वे और भी सतायेंगे। तपा-तपाकर तड़पायेंगे।

इधर रानी तारामती कौशिक के घर की दासी है। बड़ा दुष्ट है कौशिक, और उससे भी दुष्ट है उसकी स्त्री। सुबह से शाम

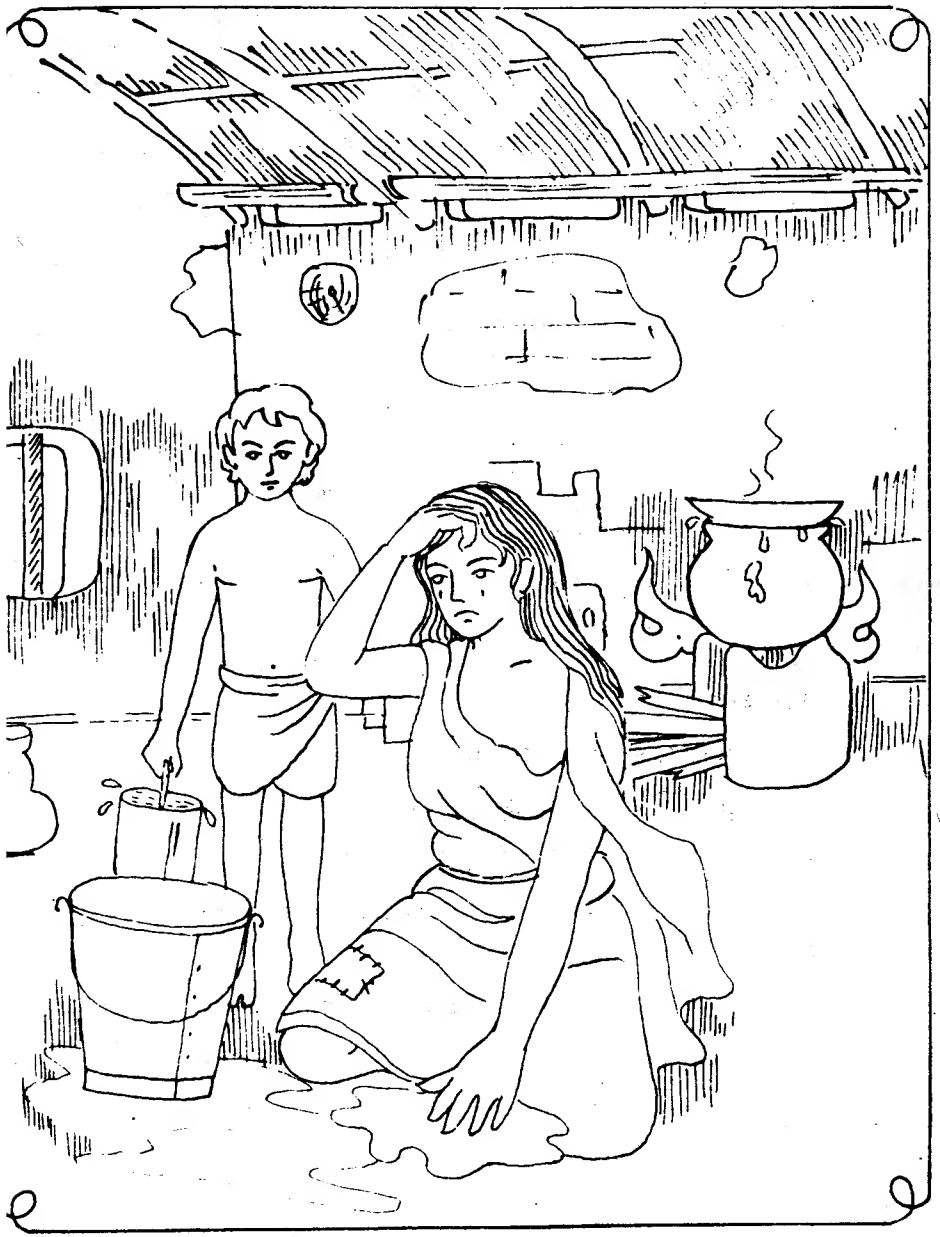

तक तारामती काम करती है। झाड़ती-बुहारती है। बरतन मलती है, उपले पाथती है, राँधती-पकाती है, घर का हर काम करती है। फिर भी मालकिन बार-बार टोकती है; ताने देने से बाज़ नहीं आती।

कहाँ राजा की रानी, और कहाँ यह दासीपना ? 'हाँ' कहते ही हजारों नौकर हाजिर रहते थे। आज वह दासी है। 'जी' कहते-कहते जबान सूखती है।

रानी थककर चूर हो जाती है। बेचारी रात होने पर मुश्किल से आधा पेट खाती है, और आधी भूखी रहकर सोती है। इतना काम करती है, फिर भी कोई पेट भरकर खाने को 'धान' तक नहीं देता। अरे रे, हे भगवान् ! किसी को ऐसा दुःख कभी न देना !

और गलीचों पर टहलनेवाला, रेशमी पलँग पर सोनेवाला रोहित ! रोहित का क्या हुआ ? बेचारा ब्राह्मण के लड़कों के साथ लँगोटी पहनकर भटकता है, और बाग-बगीचों से फूल लाता है, फल लाता है, और बारह पर दो बजे भूखा-प्यासा घर आता है। सोने की थालियों में नई-नई मिठाइयाँ अब उसे कौन परोसे ? अब तो उसके लिये ठण्डी रोटी और नमक था। कौशिक की स्त्री बड़ी ही लोभिन थी।

अयोध्या की रानी आज काशी नगरी में दासी है। अयोध्या का राजपुत्र आज कौशिक ब्राह्मण का दास है।

और राजा हरिश्चन्द्र क्या हैं ? उस चाण्डाल के घर वे क्या करते हैं ?

हरिश्चन्द्र चाण्डाल के चाकर हैं। वह जो काम कहता है, करते हैं। खड़े पैरों चौकी भरते हैं। 'जी' कहकर दौड़ते हैं। आज राजा, राजा नहीं, वीरबाहु चाण्डाल के नौकरों का भी नौकर है।

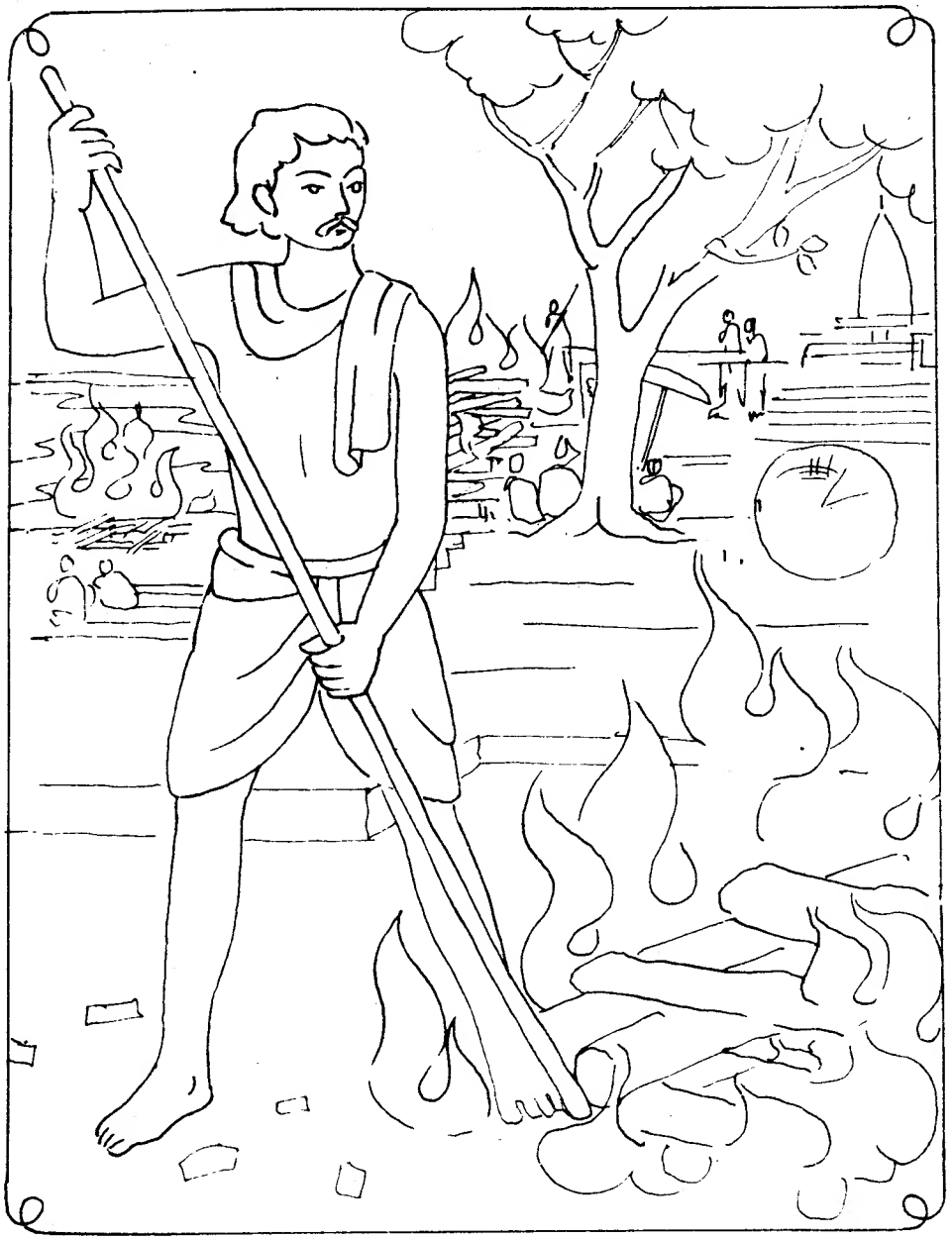

राजा और क्या करता है ?

दफनाने और जलाने को लाये गये मुर्दों पर कर वसूल करता है। जो उसे एक पैसा और एक प्याला खिचड़ी नहीं देता, उसे रोकता है।

राजा नगर के भंगियों का जमादार है। वह उनके पीछे-पीछे घूमता है। गलियाँ और चौराहे, हाट और बाजार साफ करवाता है। वह शहर की गन्दगी का दारोगा है।

और क्या करता है ?

अपराधियों की जान मारता है—राजा हरिश्चन्द्र का काम जल्लाद का काम है !

और वह रहता कहाँ है ?

मसान के पास एक कोठरी है। गन्दी है, अँधेरी है। आसपास मुर्दा ढोरों के चमड़े पड़े हैं। हाड़ों के ढेर लगे हैं। गन्दगी का पार नहीं है। वहीं वह रहता है। राजमहलों में रहने वाला, बाग-बगीचों में घूमने वाला आज मरघट में रह रहा है।

और तिस पर भी क्या राजा हरिश्चन्द्र कभी उकताता है ? कभी काम से मुँह मोड़ता है ? काम में ढिलाई करता है ? नहीं, उसका चेहरा हमेशा हँसता रहता है। वह जल्दी उठकर काम करता है।

राजा-रानी दोनों इस तरह रहते हैं। रात और दिन बिताते हैं और दुःख को सुख समझकर सहते हैं।

धर्म-संकट

हाय ! हाय ! क्या इतने पर भी हरिश्चन्द्र सुखी है ? क्या अब भी तारामती हँसती है ? भला विश्वामित्र से यह कैसे सहा जाता ? अभी तो आफत के पहाड़ टूटेंगे ।

विश्वामित्र ने तक्षक नाग को बुलाया और कहा—"जाओ फूल चुनते हुए रोहित को डँसकर उसके प्राण हर लो ।"

तक्षक फुलवारी में जा पहुँचा !

माँ की आज्ञा लेकर, माँ के पैर छूकर, रोहित बाड़ी में आया है । धूप के मारे गाल लाल सुर्ख हो रहे हैं । मुँह पर पसीना है । हाथ लम्बे कर-करके फूल तोड़ रहा है । लेकिन इतने में तो "अरे मुझे साँप ने डँस लिया रे !" कहकर रोहित धम्म से नीचे गिर पड़ा, और बेहोश हो गया ।

"दौड़ो रे, दौड़ो ! बेचारे को साँप ने डँस लिया ।" ब्राह्मण का एक लड़का घर आया, और खबर सुनाकर चला गया । तारामती गिर पड़ी—बेहोश होकर, चक्कर खाकर गिर पड़ी ! "ओ रोहित ! प्यारे रोहित !"

पर रोहित के पास जाने कौन दे ? मालिक ने कहा—"शाम को जाना । काम-काज पूरा करके जाना । यहाँ लड़के के लिये नहीं आई हो । काम के लिये बिकी हो ।"

हाय ! पहाड़ फट जायँ, आसमान टूट पड़े, धरती डगमगा जाये, छाती बिंध जाये, ऐसी यह बात थी ! लेकिन तारामती तो दासी थी । दासी का उसका धर्म था ।

लड़खड़ाते पैरों काम किया । टूटे दिल से काम किया । साँझ पड़ी और बाड़ी में गई । अरे रे ! रोहित को तो साँप ने डँसा था । हाय ! उसके प्राण निकल चुके थे ।

"रोहित, प्यारे रोहित ! अपनी माँ को छोड़कर तुम कहाँ चले गये ? रोहित ! बेटे रोहित ! अरे, एक बार तो बोलो ? एक बार तो उठो ? अपनी माँ को भेंटी तो दो । चूमा तो लो ?"

पर रोहित यों कैसे बोलता ? साँप का जहर उसे चढ़ चुका था । और अब, अब तारामती कहाँ जाये ? क्या करे ? किसे बुलाये ? अरे रे ! राजरानी की यह कैसी दशा ?

दोनों हाथों में रोहित की लाश है, और तारामती मरघट की ओर जा रही है । आकाश धुँधला है । तारों का तेज भी धुँधला है । चारों दिशायें आज धुँधली-धुँधली हैं । तारामती पर आज दुःख के पहाड़ टूट पड़े हैं ।

भयावना मरघट ! उल्लू चिल्ला रहे हैं । झिल्लियाँ झंकार रही हैं । घोर अँधेरा है । झाड़ियों और झंखाड़ों में भयावने कीड़े भटक रहे हैं, साँप फुफकार रहे हैं, बिच्छू दौड़ लगा रहे हैं, सियार रो रहे हैं, बीच-बीच में भयंकर सनसनाहट और गर्जन-तर्जन सुनाई पड़ता है ।

अकेली तारामती और गोद में रोहित की लाश है । अरे ! प्यारे पुत्र को अपने हाथों कैसे दफनाया जाय ? तारामती रो रही है । शरीर सारा भीग रहा है । राजा की रानी आज कहाँ है ?

"कौन है उधर, इस काली अँधेरी रात में ? कर चुराने के लिए उधर छिपकर कौन बैठा है, यह ?"

राजा हरिश्चन्द्र रौंद पर निकले थे। कहीं कोई रात को अँधेरे में मुर्दा गाड़कर चला न जाये ?

"अरे रे, मैं तो एक दु:खी स्त्री हूँ। अच्छा हुआ, जो भगवान् ने आपको यहाँ भेज दिया। क्या आप कोई देव हैं ? जिला दो न भगवान्, मेरे इस इकलौते लाल को, जिला दो दयामय ! आज इसे साँप ने डँस लिया है। दया करो, दया करो !"

"महाशयाजी, मैं कोई देव नहीं हूँ। मैं तो आदमी हूँ। वीरबाहु का दास हूँ। नाम मेरा विराध है। कहो, मैं कैसे तुम्हारे बच्चे को बचाऊँ ? अरे रे ! मुझे तुम पर दया आती है, पर मैं क्या कर सकता हूँ ?"

"देवि ! रोना बन्द करो। अब इसमें जान नहीं रही। अब तो यह लाश है। देवि, लाओ, मेरा कर चुका दो, और गाड़ दो अपने इस बेटे को !"

अरे रे ! कैसी भगवान् की लीला !

मसान में, भयावनी काली अँधेरी रात में, राजा हरिश्चन्द्र और तारामती ! कोई किसी को पहचानता नहीं, और प्यारा पुत्र रोहित ? वह तो मरा पड़ा है।

"हे भगवान्, लेकिन मैं कर कैसे चुकाऊँ ? मेरे पास तो कुछ भी नहीं है। एक फूटी कौड़ी भी नहीं है। मेरा अपना कुछ नहीं। अरे, ओ दयालु ! दया करके मुझे क्षमा करो। इस बच्चे को गाड़ने दो।"

"क्षमा करो देवि, कर वसूल करके लाश को गाड़ने देना ही मेरा कर्त्तव्य है। मैं वीरबाहु का दास हूँ। जैसी स्वामी की आज्ञा ! लेकिन देवि, तुम इतना विलाप क्यों करती हो ? तुम इतनी अधीर

क्यों हो रही हो ? तुम्हारे गले में मंगलसूत्र जो है। तुम इसे क्यों नहीं बेच डालती ? इसमें से कर चुकाया जा सकेगा। जाओ देवि, जल्दी करो। मंगलसूत्र बेच लाओ।"

"मंगलसूत्र ? अरे, मेरे गले का मंगलसूत्र ये देख रहे हैं ? सिवा राजा हरिश्चन्द्र के इसे और कौन देख सकता है ? वे ही अकेले देख सकते हैं; देवों का ऐसा ही वरदान रहा है। तो क्या सचमुच ही ये हरिश्चन्द्र हैं ? ओ मेरे हरिश्चन्द्र !"

"ओ मेरी तारामती !"

"रोहित ! हमारे प्यारे रोहित को साँप ने डँस लिया है ?"

"अरे रे ! क्या प्यारे रोहित को साँप ने खा लिया ?"

"रोहित ! रोहित ! प्यारे रोहित !"

राजा और रानी रोते हैं। रात रोती है। पेड़ रोते हैं। मसान रोता है। सितारे रोते हैं। अँधेरा रो रहा है। सारा संसार रो रहा है।

"तारामती, जाओ और मंगलसूत्र बेच लाओ। यही एक उपाय है। बिना कर लिए मैं आज्ञा नहीं दे सकता। मेरा दूसरा धर्म ही नहीं है।"

आधी रात को तारामती मंगलसूत्र बेचने चली !

आधी रात को हरिश्चन्द्र रोहित के शव की रक्षा करने बैठे।

धन्य है, सत्यवीर हरिश्चन्द्र को ! धन्य है, सत्य वीरांगना तारामती को !

धर्म-परीक्षा

लेकिन क्या विश्वामित्र अब भी पसीजे हैं ? क्या उनकी आँखों में अब भी आँसू आये हैं ? उन्हें दया आई है ?

नहीं, नहीं । अभी तो वे इन्हें और तपायेंगे, और तचायेंगे । दुष्ट बनकर तपायेंगे । पूरी-पूरी दुष्टता दिखायेंगे ।

काशी में सेंध लगी । चोरों ने चोरी की । नगरसेठ के बेटे को चुराया, हीरा-माणिक और मोती भी चुराये ।

विश्वामित्र को मौका मिला । चोरों को उन्होंने साथ लिया । लड़के को छिपा दिया और चोरों को समझा दिया ।

"अरी ओ बहन, आधी रात को कहाँ जा रही हो ?"

"भाई, यह मंगलसूत्र बेचने चली हूँ । अपने बेटे को दफ़नाने के लिए मुझे कर जो चुकाना है ।"

"क्यों बेचती हो इसे ? लो, ये कुछ पैसे ले लो । कल मुझे लौटा देना । और देखो, यह एक पोटली है, इसे सँभालना ।"

चोरों ने चोरी का माल तारामती को दे दिया ।

क्या तारामती चोर ठहरेगी ? नगरसेठ के लड़के की हत्यारिन ठहरेगी ? मौत के मुँह में जा पड़ेगी ? हरिश्चन्द्र उसे जान से मारेंगे ?

देखें, अब भी विश्वामित्र मानते हैं क्या ?

बेचारी तारामती पैसे लेकर मरघट की ओर जा रही थी । सबेरा होने को आया था । उसे फिर से नौकरी पर हाज़िर होना था—धर्म का पालन तो करना ही था ।

विश्वामित्र ने पुलिस को झूठी ख़बर दे दी । चारों ओर पुलिस के जवान दौड़ पड़े ।

"पकड़ो, पकड़ो, उस औरत को पकड़ो !"

"अरे, बस, यही है, यही ! यही वह हत्यारिन है !"

"अरे, देखो तो, इसी के हाथ में हीरा-माणिक की यह पोटली भी है !"

"सेठ का लड़का कहाँ है ? किधर फेंका है ? कहाँ छुपाया है ?"

सिपाहियों ने तारामती को चारों ओर से घेर लिया । मुश्कें बाँधकर वे उसे ले चले ।

"लेकिन....."

"लेकिन और वेकिन ! चोरी की ! खून किया ! चल, अब न्यायाधीश के पास चलना होगा ।"

उधर हरिश्चन्द्र पल-पल पर तारामती की राह देख रहे हैं । इधर पुलिस तारामती को कचहरी में ले जा रही है ।

न्यायाधीश ने न्याय किया—"ले जाओ, इस पापिन को ! मरघट पर ले जाओ ! जाओ, कटवा डालो इसे । चोर, खूनी, हत्यारिन !"

दुःख से आकुल तारामती क्या बोलती ? क्या कहती ? किसे कहती ? कौन सुनता ?

बग़ैर जाँच-पड़ताल के, बेगुनाह को सज़ा सुना दी गई ! न्याय का वह नाटक ही तो था !

मरघट पर हरिश्चन्द्र बाट जोह रहे थे। लेकिन, अरे ! यह क्या ? तारामती को तो सिपाहियों ने बाँध रक्खा है। और जमादार के हाथ में उसे क़त्ल करने का हुक्म है।

"विराध ! इस स्त्री ने खून किया है। चोरी की है। इसी वक्त इसे मार डाल। धड़ से सर जुदा कर दे।"

और हरिश्चन्द्र ने क्या किया ?

हरिश्चन्द्र को तो काठ मार गया ! "यह मेरी तारामती ? ऐसा कलंक ? मैं इसे मारूँ ? निर्दोष बेचारी तारामती !"

और तारामती ?

तारामती खड़ी थी। मौत के खम्भे के पास खड़ी थी। मरने के लिये खड़ी थी। आखिरी घड़ी के लिये तैयार थी। और आसमान के फ़रिश्ते ? आकाश के देव, तारे और रात ? पवन और पेड़ ? सहम उठे थे, सब, थम गये थे ! हाहाकार पुकार उठे थे।

"राजन् ! घबराओ नहीं। हिचकिचाओ नहीं। धर्म का पालन करो। निर्दोष हूँ और कलंक लगा है। लेकिन आप तो धर्म-पालन कीजिये। धर्म के लिये राज छोड़ा। धर्म के लिये दास बने। अब आज धर्म को मत छोड़िये ! आखिर धर्म हमें तारेगा—धर्म हमारी रक्षा करेगा।"

तारामती ने हरिश्चन्द्र के पैर छुए। बार-बार परिक्रमा की। धूल माथे पर चढाई। रोहित की लाश को चूमा और मरने के लिये तैयार हो गई।

"हे भगवन् ! हे तीन लोक के धनी ! जनमो-जनम हरिश्चन्द्र ही को देना। ये मेरे राजा और मैं इनकी रानी। हमेशा हम एक साथ रहें। सत्य के लिये जीयें और सत्य के लिये मरें।"

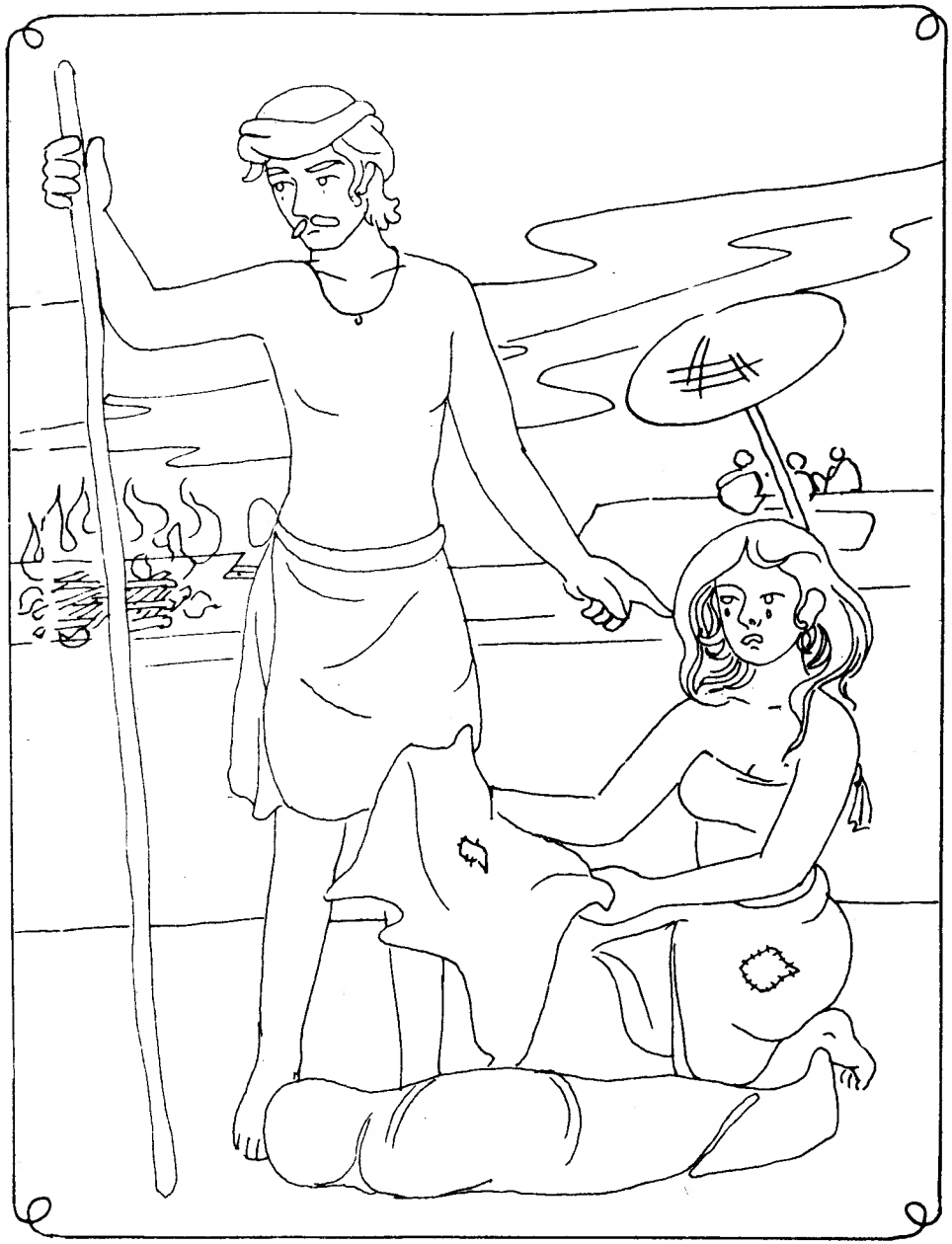

हरिश्चन्द्र मन ही मन रो पड़े। आँखों में आँसू छलछला आये। रानी के सामने ताकते रहे।

फिर कुल्हाड़ी सँभाल ली। बगैर काँपे सँभाली और तारामती की गरदन पर..... ... .

"ठहरो ! ठहरो !" चारों ओर से पुकार मच गई। विश्वामित्र खड़े थे। हरिश्चन्द्र का हाथ पकड़ लिया, और बोले— "ठहरो ! ठहरो !"

आसमान से फूल बरसे। मीठी, ठण्डी, हलकी हवा बही। पूरब में सूरज उगा। दिशायें सब हँस रही थीं। सारी दुनिया हँस रही थी; प्रसन्न थी ! ऋषि ने रोहित का ज़हर उतार दिया और रोहित उठ खड़ा हुआ !

"विजय है, विजय है ! विजय है, आज हरिश्चन्द्र और तारामती की ! सत्य और धर्म की !"

तारामती, हरिश्चन्द्र और रोहित विश्वामित्र के पैर छूते हैं। विश्वामित्र आशीर्वाद देते हैं। तप देते हैं, तेज देते हैं !

वशिष्ठ अधर में चढ़कर फूल बरसाते हैं।

धन्य है ! धन्य है ! सत्यवीर हरिश्चन्द्र को धन्य है !

———